

स्वास्थ्य पर धर्म का प्रभाव

—युवाचार्य महाप्रभु

[सुख्यात दार्शनिक, बहुश्रुत विद्वान् तथा
प्रेक्षाध्यान-योग के अनुभवी साधक एवं प्रवक्ता]



मनुष्य इस विश्व का सर्वश्रेष्ठ प्राणी है। इसकी श्रेष्ठता का मानदण्ड है—विकसित नाडी-तन्त्र। मनुष्य को जैसा नाडीतन्त्र उपलब्ध है, वैसा किसी अन्य प्राणी को उपलब्ध नहीं है। इस गरिमा-मय उपलब्धि के लिये उसे सर्वश्रेष्ठ कहा जा सकता है। उसके मस्तिष्क की संरचना बहुत जटिल है। उसका मेरुदण्ड बहुत शक्तिशाली है। उसे अस्थि मज्जा की विशिष्टता प्राप्त है। अस्थि-रचना केवल एक ढांचा नहीं है, केवल एक आधार नहीं है; उसमें अनेक विशेषताएँ छिपी हुई हैं। सुदृढ़ अस्थिरचना वाला व्यक्ति ही मन पर नियन्त्रण कर सकता है, मानसिक एकाग्रता को साध सकता है। अस्थिरचना के साथ स्वास्थ्य का भी गहरा सम्बन्ध है। अपने आप में रहने वाला स्वस्थ (स्वास्मिन् तिष्ठति इति स्वस्थ) कहलाता है। स्वस्थ की यह व्युत्पत्ति दूसरे नम्बर की है। उसकी पहले नम्बर की व्युत्पत्ति है—जिसकी अस्थियाँ अच्छी होती हैं वह स्वस्थ (सुष्ठु अस्थि यस्य स स्वस्थः) होता है। मनुष्य के संस्कार अस्थि और मज्जा में अन्तर्निहित होते हैं। जैसा संस्कार वैसा विचार, व्यवहार और आचार।

स्वास्थ्य का सम्बन्ध केवल शरीर से नहीं है। शरीर, मन और भावना—इन तीनों की समीचीन समन्विति का नाम स्वास्थ्य है। बहुत लोग स्वस्थ रहने के लिये पोषक द्रव्यों पर ध्यान केन्द्रित किये हुए हैं। यह शारीरिक स्वास्थ्य का एक बिन्दु हो सकता है। शरीर अकेला नहीं है, वह एक समन्वय है। अकेला शरीर स्वस्थ नहीं रह सकता। मन स्वस्थ है तो शरीर भी स्वस्थ है। यदि मन स्वस्थ नहीं है तो शरीर कैसे स्वस्थ रहेगा? हजारों-हजारों वर्ष पहले आयुर्वेद के आचार्यों ने इस सचाई का अनुभव किया था—रोग शारीरिक और मानसिक—दोनों प्रकार के होते हैं। वर्तमान आयुर्विज्ञान के अनुसार मनोकायिक रोगों की तालिका बहुत लम्बी है। मनोकायिक रोग मन और शरीर—दोनों की रुग्णता से होने वाला रोग है। कायिक रोगों की चिकित्सा

(१७)

औषधि के द्वारा की जा सकती है। मनोकायिक रोग के लिये औषधि पर्याप्त नहीं है। मनोभावों को बदले बिना उसकी चिकित्सा सम्भव नहीं होती।

स्वास्थ्य का मूलस्रोत है—भावों की विशुद्धि। हमारा पूरा जीवन भावधारा के द्वारा संचालित है। भाव से मन प्रभावित होता है और मन से शरीर प्रभावित होता है। जितने निषेधात्मक भाव हैं, वे सब रोग को निमंत्रित करने वाले हैं। क्रोध निषेधात्मक भाव है। उसका वेग अनेक रोगों को निमंत्रित करता है। उच्च रक्तचाप, हृदय रोग आदि के लिये वह विशेष उत्तरदायी है। लोभ भी निषेधात्मक भाव है। उसके वेग से आहार के प्रति अरुचि, अग्निमांद्य आदि रोग उत्पन्न हो जाते हैं। भावों से उत्पन्न होने वाले रोगों का लम्बा विवरण आयुर्वेद के ग्रन्थों में मिलता है। आज वैज्ञानिक भी भाव और रोग के सम्बन्ध की खोज में काफी आगे बढ़े हैं।

स्वास्थ्य के पाँच लक्षण हैं :—

१. शारीरिक धातुओं और रसायनों का सन्तुलन
२. प्राण का सन्तुलन
३. इन्द्रियों की प्रसन्नता
४. मन की प्रसन्नता
५. भावों की प्रसन्नता

सन्तुलित आहार से धातुओं और रसायनों का सन्तुलन बनता है। इस सन्तुलन का सम्बन्ध आहार से है—यह स्पष्ट है। इसका सम्बन्ध धर्म से है—यह बहुत अस्पष्ट है। आहार का संयम करना एक तपस्या है और तपस्या धर्म है। जो व्यक्ति कोलेस्टेरोल बढ़ाने वाली वस्तुएँ अधिक मात्रा में खाता है वह धमनिकाठिन्य और हृदय रोग से मुक्त नहीं रह सकता। जो व्यक्ति अधिक मात्रा में नमक खाता है, वह उच्च रक्तचाप और गुर्दे की बीमारी से कैसे बच सकता है? अधिक मात्रा में सफेद चीनी खाने वाला क्या अम्लता और मधुमेह को निमंत्रित नहीं कर रहा है? हमारे शरीर के लिये आहार जितना जरूरी है, उतना ही जरूरी है आहार का संयम अथवा अस्वाद का व्रत।

जीवन-यात्रा के लिये मन की चंचलता जरूरी है। वह सीमा से आगे बढ़ जाती है तब उससे स्वास्थ्य प्रभावित होता है। पहले मानसिक स्वास्थ्य फिर शारीरिक स्वास्थ्य। चंचलता को कम करना केवल मानसिक शान्ति की ही साधना नहीं है, वह शारीरिक स्वास्थ्य की साधना है। मन की एकाग्रता धर्म का आन्तरिक तत्त्व है। वह स्वास्थ्य का भी एक महत्वपूर्ण अंग है।

आहार, नींद और ब्रह्मचर्य—ये तीन स्वास्थ्य के आधार माने जाते हैं। आहारसंयम की भाँति नींद का संयम भी आवश्यक है। बहुत नींद लेना स्वास्थ्य के लिए हितकर नहीं है। सामान्यतः दिन में सोना अच्छा नहीं है। यदि आवश्यक हो तो बहुत कम समय के लिए। बहुत है, आधा घण्टा। एक घण्टा तो बहुत ज्यादा है। रात में भी अवस्था अनुपात में पाँच, छः या सात घण्टा नींद लेना पर्याप्त है। जागरूकता धर्म का महत्वपूर्ण अंग है।

सुकरात से पूछा गया—संभोग कितनी बार करना चाहिये ?

सुकरात—जीवन में एक बार।

यह सम्भव नहीं हो तो ?

वर्ष में एक बार।

यह भी सम्भव न हो तो ?

महीने में एक बार ।

यह भी सम्भव न हो तो ?

सुकरात ने कहा—कफन सिरहाने रख लो फिर चाहे जैसे करो ।

आहार-संयम, निद्रा-संयम, ब्रह्मचर्य और विधायक भाव ये सब धर्म के प्राण तत्व हैं । इनकी आराधना धर्म की आराधना है और स्वास्थ्य की साधना भी ।

आज धर्म की आराधना कम होती है, सम्प्रदाय की आराधना अधिक होती है । साम्प्रदायिक आचार-संहिता को धर्म मानने वाले लोग अधिक हैं । धर्म का मूल तत्व भिन्न नहीं हो सकता । उसमें देश-काल का भेद भी नहीं होता । यदि त्याग और तपस्या के प्रयोग जीवन में किये जाएँ तो साम्प्रदायिकता की समस्या भी कम हो सकती है, स्वास्थ्य भी अच्छा रह सकता है ।

कुछ रोग आगंतुक होते हैं । चोट लगी हड्डी टूट गई । कुछ संक्रामक होते हैं । कुछ रोग कर्मज होते हैं । ये सभी स्वास्थ्य को कमजोर बना देते हैं । इस बहुसंक्रामी युग में कोई आदमी अकेला रहता नहीं, अप्रभावित हुए बिना भी नहीं रह सकता । इस स्थिति में स्वास्थ्य के मूल तत्व की खोज आवश्यक होती है । वह है प्राण ।

शरीर की अतिरिक्त चंचलता—

वाणी की अतिरिक्त चंचलता

मन की अतिरिक्त चंचलता

श्वास की तेज गति

आहार का असंयम

भोग का असंयम

निषेधात्मक भाव

ये सब प्राण को क्षीण करते हैं । आयुर्विज्ञान की भाषा में रोग-निरोधक क्षमता और आत्मरक्षा प्रणाली को अव्यवस्थित बना देते हैं । फलतः बीमारियों के बीज को पनपने का मौका मिल जाता है ।

धर्म की आराधना का प्रत्यक्ष उद्देश्य है—भावना की विशुद्धि, मन की एकाग्रता और आत्मा की अनुभूति । उसका परोक्ष परिणाम है—प्राण को प्रबल बनाना । प्राण प्रबल होता है, स्वास्थ्य की धारा अपने आप प्रवाहित हो जाती है ।



पूर्णता या परोपाधेः सा याचितकमण्डनम् ।

या तु स्वाभाविकी संव जात्यरत्न विभानिभा ।

पराई वस्तु (पुद्गलों) से जो पूर्णता मानी जाती है, वह तो उधार माँगकर पहने हुए आभूषण के समान है । जैसे कि रत्न की अपनी अलौकिक कान्ति उसकी अपनी होती है वैसे ही आत्म भावों से प्राप्त पूर्णता आत्मा की वास्तविक पूर्णता है ।

—ज्ञानसार १/२

(विवेचक—मुनिश्री भद्रगुप्तविजय जी)